SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

बिहार में कृषि पर वैश्वीकरण का प्रभाव एवं समस्याऐं: एक संक्षिप्त परिचय

मुकेश कुमार राम, Ph.D.
ग्राम–टेरूऑ, पोस्ट–फैजलाहपुर, गोपालगंज, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
मुकेश कुमार राम

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 05/07/2023
Revised on : -----
Accepted on : 12/07/2023
Plagiarism : 02% on 05/07/2023

शोध सार

कृषि एक अत्यन्त व्यापक आर्थिक कार्य है तथा इसके विविध रूप हैं। विस्तृत अर्थों में इसके अन्तर्गत कुदाल पर आधारित जीवन–निर्वाह वाली खेती से लेकर मशीनों द्वारा वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके व्यापारिक उद्देश्य से की जाने वाली कृषि तक आती है। इतनी व्यापक और विषय अर्थ को बताने के लिए ही बुकानन ने 'कृषि' शब्द को मिश्र–शब्द (Portmanteau Word) कहा है जिसका बड़ा व्यापक अर्थ है और इसके अन्तर्गत मानव के प्रयोग के लिए खाद्य पदार्थ अथवा कच्चा माल उत्पन्न करने के लिए मिट्टी का उपयोग करने वाली अत्यन्त साधारण से लेकर अत्यन्त जटिल तक विधियाँ आती हैं।' (Agriculture is something of portmanteau word, including within its denotationA wide range from very simple to human use.) / इसी तथ्य को मेकार्टी ने साधारण शब्दों में रखा है कि 'सोद्देश्य फसलोत्पादन एवं पशुपालन को कृषि कहते हैं।' कृषि के इस व्यापक अर्थ को उसका अंग्रेजी समानार्थी शब्द "Agriculuture" की व्युत्पत्ति से आंशिक रूप से समझा जा सकता है।

मुख्य शब्द

शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, खाद्य सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधन, वैश्वीकरण.

कृषि मानव के उन उत्पादक प्रयासों को कहते हैं जिनके द्वारा वह भूमि पर बस कर उसके उपयोग की कोशिश करता है और यथासंभव पौधों एवं पशुओं के प्राकृतिक प्रजनन एवं वृद्धि की प्रक्रिया को तीव्र एवं विकसित बनाता है। इन सभी कार्यों का उद्देश्य मानव के लिए आवश्यक या उसके द्वारा वांछित वानस्पतिक एवं पशु उपजें उत्पन्न करना होता है। इसी तरह के विचार जसबीर सिंह के है। उन्होंने कृषि की सविस्तार व्याख्या

की है। उनके अनुसार 'कृषि फसलोत्पादन से अधिक व्यापक है। यह मानव द्वारा ग्रामीण पर्यावरण का रूपान्तरण है जिससे कतिपय उपयोगी फसलों एवं पशुओं के लिए सम्भव अनुकूल दशाएँ सुनिश्चित की जा सकें। इनकी (फसलों एवं पशुओं की) उपयोगिता सतर्क चयन से बढ़ाई जाती है। इसमें उन सभी पद्धतियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रयोग कृषक कृषि के विभिन्न तत्वों को विवेकपूर्ण ढंग से संगठित करने और अनुकूलतम उपयोग में करता है।[1]

इस प्रकार कृषि प्राकृतिक वातावरण पर आधारित है, जिनका मानव अपनी क्षमता तथा आवश्यकतानुसार विकासोन्मुख दिशा की ओर संशोधन करता है। इनका आरम्भ कृषि के अनुकूल वातावरण ढूँढ़ने के प्रयास से होता है। यह उपयुक्तता जलवायु, धरातल एवं अप्रवाह, मिट्टी तथा जैविक तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। विश्व के विभिन्न भागों में इन कारकों में समानता नहीं है जिससे कृषि के विभिन्न रूप मिलते हैं। प्राकृतिक वातावरण के इन तत्वों को भी इस तरह संशोधित करने की कोशिश की जाती है कि उनकी उपयोगिता बढ़ सके। खेत बनाना, जोतना, जल–प्रवाह की व्यवस्था करना आदि इसी प्रकार के कार्य हैं। प्रकृति द्वारा उपस्थित की जाने वाली अवरोधक परिस्थितियों पर नियंत्रण करने का प्रयास, जैसे नमी नियन्त्रण हेतु सिंचाई या जल प्रवाह, मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए खाद एवं उर्वरक, तापमान कम करने के लिए छाया का उपयोग आदि ऐसे ही कार्य हैं। साथ ही उपलब्ध भौगोलिक दशाओं के लिए उपयुक्त फसलों एवं पशुओं की जातियों को विकसित करके भी प्राकृतिक सम्भावनाओं का अधिकतम उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता है।

ये सभी कार्य प्राकृतिक वातावरण के साथ ही कृषक की सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी विकास के स्तर पर भी निर्भर होते हैं। संपन्न, विकासोन्मुख क्षेत्रों में तकनीकी तथा अन्य रूपों में निवेशों का अधिक उपयोग करने वाली कृषि की संरचना एवं उद्देश्य का प्रतिरूप पुरातन तकनीकी तथा पूँजीरहित कृषि की संरचना एवं उद्देश्य से पूर्णतः भिन्न होना स्वाभाविक है। उदाहरणस्वरूप, पश्चिमी विकसित देशों में कृषि–पद्धति और तकनीकी में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं तथा विज्ञान का प्रवेश उसके सभी पक्षों में दृष्टिगत होता है। फलतः अधिक उपज दर, अधिक उत्पादन तथा उसकी अधिक विश्वसनीयता पाश्चात्य देशों की कृषि की विशेषताएँ हैं। इसके विपरीत दक्षिण पूर्वी एशिया में गहन कृषि होती है, परन्तु कई शताब्दियों से कृषि–पद्धति और तकनीकी में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ और पश्चिमी देशों की तुलना में कृषि पिछड़ी हुई है। इसी भाँति उष्णकटिबन्ध के कई भागों में आदिम (Primitive) कृषि का रूप देखने को मिलता है। यहाँ कृषि उत्पादन, उसकी अर्थव्यवस्था तथा पद्धतियाँ संसार के अन्य भागों से नितांत भिन्न हैं। इस प्रकार कृषि प्राकृतिक तथा मानवीय तत्वों एवं प्रक्रियाओं के पारस्परिक (interaction) संबंधों का परिणाम है। इन तत्वों एवं प्रक्रियाओं में स्थानीय एवं क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण इनका अन्तर्सम्बन्ध भी विभिन्न स्थानों एवं क्षेत्रों में भिन्न प्रकार का होता है। इसी विभिन्नता का प्रतिफल है कि कृषि–प्रक्रियाओं में स्थानीय तथा प्रादेशिक अन्तर पाया जाता है तथा ये प्रक्रियाएँ अलग–अलग प्रकार की ग्राम्य– भूदृश्यों को जन्म देती हैं।

मानवीय आर्थिक कार्यों में कृषि कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसा आर्थिक कार्य है जिसका विकास तो लेखन–कला के पूर्व हुआ था, परन्तु आज 'सुपर टेकनोलॉजी' के युग में भी अपरिहार्य बना हुआ है। कृषि सभी छोटे–बड़े विकसित तथा विकासशील देशों में की जाती है। अतः अन्य आर्थिक कार्यों की तुलना में यह अधिक सार्वभौमिक है। इस सार्वभौमिकता का मूल कारण कृषि का उपभोक्ता (विशेषतः खाद्य) वस्तुओं का लगभग एक मात्र स्रोत का होना है। इन वस्तुओं की विकासशील तथा घने बसे देशों में सर्वाधिक माँग है तथा इनकी कमी प्रमुख समस्या है। यह उल्लेखनीय है कि इन भागों में आय का अधिकाधिक भाग भोजन और वस्त्र पर व्यय किया जाता है। ये दोनों कृषि के ही उत्पाद हैं। इतने व्यय के बाद भी निवासियों के भोजन संतुलित नहीं होते। यहाँ कृषि की प्रधानता और खाद्य की कमी विचारणीय प्रश्न है। विकासशील देश के भोजन संतुलित नहीं होते। विकासशील देशों के विपरीत विकसित देशों में खाद्य–वस्तुओं की कमी नहीं होती, यद्यपि कुछ देश आयातक है तो कुछ अन्य उत्पादन–अधिक्य (Surplus Production) के क्षेत्र हैं। इस प्रकार कृषि–उत्पादन में विकासशील और विकसित देशों का ध्रुवीकरण हुआ है।[2]

विश्व में औद्योगीकरण और नगरीकरण में तीव्र वृद्धि होते हुए भी कृषि ही एक ऐसी क्रिया है जिससे सर्वाधिक क्रियाशील जनसंख्या लगी हुई है। संसार की (1993) में कार्यरत जनसंख्या का 45.2 प्रतिशत भाग जीविका के लिये इस पर निर्भर है। विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत कृषि होती है। उदाहरण स्वरूप सन् 1986–87 में भारत की कुल घरेलू उत्पत्ति का 31 प्रतिशत भाग कृषि से प्राप्त हुआ।

कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसके लिए उत्पादन की प्रति इकाई प्राप्त करने के अपेक्षा अधिक भूमि की आवश्यकता होती है। इस कारण पृथ्वी के एक बड़े भाग को मानचित्र पर कृषि के अन्तर्गत दिखाया जा सकता है। मानचित्र पर इस व्यवसाय के प्रादेशीकरण का चित्रण भी सम्भव है। आर्थिक कार्य के रूप में कृषि को दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है एक, जीविका अर्जित करने के साधन के रूप में; दूसरे, एक विशिष्ट प्रकार के जीवन के रूप में। प्रथम रूप में कृषि एक उद्योग के रूप में है तथा कृषि–प्रक्रिया से कृषक का जीवन सम्बद्ध नहीं है परन्तु दूसरे रूप में कृषक के जीवन के सभी पक्ष कृषि से जुड़े हैं। दोनों प्रकार की कृषि का स्वरूप प्राकृतिक तथा मानवीय तत्वों के अन्तर्सबन्धों का ही परिणाम है, केवल अन्तर इन तत्वों के सापेक्ष प्रभाव की तीव्रता तथा कृषि और कृषक–जीवन के पारस्परिक सम्बन्धों की गहनता में होता है। उद्योग के रूप में कृषि का मूल उद्देश्य व्यापार होता है। इस दृष्टिकोण का आधुनिक रूप विशिष्ट कृषि (Specialzed Agriculture) है जिनमें उत्पादन के आर्थिक तथा मानवीय उपादानों (पूँजी, बाजार, यातायात, वैज्ञानिक विधि एवं तकनीकी, कुशल श्रमिक तथा परिष्कृत उपकरण) का अधिक निवेश (Input) और महत्व होता है। इससे उत्पादन की स्थिरता बढ़ जाती है। दूसरी प्रकार की कृषि जीवन–निर्वाह का एक साधन है और जीवन की अभिव्यक्ति है।

भोजन और आवास का स्रोत होने के साथ ही कृषि अन्य कार्यों के विकास में भी सहायक होती हैं कई उद्योगों के लिए कृषि कच्चे मालों का स्रोत है, जैसे सूती, ऊनी, एवं जूट वस्त्रोद्योग, शक्कर उद्योग, फल–सब्जियों पर आधारित उद्योग, रबर उद्योग आदि। यही कारण है कि उन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं जहाँ कृषि उन्नत होती है और उससे समुचित मात्रा में कच्चा माल प्राप्त होता है। औद्योगिक विकास में सहायक होने के साथ ही विकसित कृषि में कई औद्योगिक उत्पाद निवेश के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार कृषि उन उद्योगों के विकास में भी परोक्षरूप से सहायक होती है। इन दृश्यों से भी कृषि का भौगोलिक अध्ययन समीचीन है।

कृषि के विकास के साथ ही यातायात तथा व्यापार जैसे आर्थिक कार्य भी विकसित होते हैं। कृषि उपजों को बाजार तक लाने और विकास के लिए आवश्यक वस्तुओं की कृषि क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए यातायात के साधनों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी प्रदेश में यातायात का विस्तार कृषि–विकास से सम्बद्ध रहा है। उत्तर भारत में आवागमन के साधनों के विकास में वहाँ की अपेक्षाकृत विकसित कृषि सहायक हैं। स्थानीय, प्रादेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारों में कृषि उत्पादन महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गांवों से नगरों की मंडियों को कृषि–उत्पादन भेजा जाता है। इसी प्रकार वे वस्तुएँ जो देश के एक भाग में उत्पन्न होती हैं, अन्य भागों में भेजी जाती हैं, जैसे चाय, मसाले तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय फल भारत के कुछ ही भागों में उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु सभी भागों में वितरित किये जाते हैं। कृषि उत्पादों का अन्तर्राष्ट्रीय आदान–प्रदान भी कम नहीं होता है। उत्तरी अमेरिका, अर्जेन्टाइना तथा आस्ट्रेलिया से गेहूँ, भारत व श्रीलंका से चाय, ब्राजील तथा अफ्रीका से कहवा, नारियल, मलेशिया से रबर इनके उपयुक्त उदाहरण हैं। वितरण की यह सम्पूर्ण जटिल व्यवस्था यातायात के साधनों के विकास पर निर्भर होती है। इस प्रकार कृषि किसी क्षेत्र के आर्थिक क्रियाकलापों को बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है।

भौगोलिक कारक कृषि की बाह्य सीमाएं निर्धारित करते हैं। इन कारकों में सबसे महत्वपूर्ण जलवायु है जो एक ओर कृषि की अक्षांशीय सीमा तथा ऊँचाई की सीमा निर्धारित करती है तो दूसरी ओर फसलों का प्रादेशिक वितरण तथा उत्पादन की सभी प्रक्रियाएं इस पर निर्भर होती है। अनुकूल जलवायु के क्षेत्रों में भी धरातल की प्रकृति कृषि की संभावनाओं को निश्चित करती है। कृषि पर धरातल का प्रभाव ऊँचाई, ढाल की प्रवणता एवं उच्चावच के माध्यम से पड़ता है। तीसरा प्रमुख प्राकृतिक कारक मिट्टी है। इसकी भौतिक, रासायनिक तथा जीवीय विशेषताएं कृषि को विभिन्न रूपों में प्रभावित करती हैं। कृषि की स्थानीय संरचना और प्रादेशिक विभिन्नता को उत्पन्न करने वाले इन प्राकृतिक कारकों का अध्ययन कृषि भूगोल का अंग है।

कृषि केवल प्राकृतिक कारकों का परिणाम नहीं है, बल्कि मानव निर्मित दशाएँ–सामाजिक तथा आर्थिक, इसके प्रतिरूप को निश्चित करने में महत्वपूर्ण हैं। भूमि–स्वामित्व, खेतों का आकार, क्षेत्रफल एवं वितरण, कृषि श्रमिकों की उपलब्धि, कृषि के उपयोग में आने वाले औजार (उपकरण) सिंचाई की सुविधा, बाजार की स्थिति, यातायात के साधन एवं कृषकों के दृष्टिकोण सभी कृषिय भूमि के उपयोग को प्रभावित करते हैं। जैसेः सिंचाई, रासायनिक उर्वरकों, कीटाणुनाशक एवं रोगनाशक रसायनों का प्रयोग, उन्नत बीज, यंत्रीकरण तथा स्व–चलित मशीनों का उपयोग। कृषि के स्वरूप और प्रादेशिक वितरण को प्रभावित करने वाली इन प्रवृतियों का अध्ययन कृषि अर्थशास्त्र का विषय है।

कृषि व्यवसाय को प्रभावित करने वाले इस कारकों के सापेक्षित महत्व को भूमि उपयोग एवं कृषि के स्थानीकरण के सिद्धांत मॉडल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं कृषि की नवीन विधियाँ, उपकरण एवं निवेश के फैसले की प्रक्रिया को समझना भी आवश्यक होता है, जिससे कृषि के आधुनिकीकरण के मार्ग में आने वाली वाधाओं को हटाया जा सके। परिसीमित क्षेत्रीय इकाई का भौगोलिक विवरण प्रादेशिक अध्ययन होता है। प्रादेशिक विशिष्टता विविध भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों के संयोग से गठित समग्र भौगोलिक भूदृष्य में अभिव्यक्त होती है। दूसरे शब्दों में, प्रादेशिक विशिष्टता क्षेत्र विशेष की भौगोलिक पहचान है, जिसका परिलक्षण विभिन्न भौगोलिक परिप्रेक्ष्यों के माध्यम से होता है। प्रदेश कोई पृथक या एकाकी क्षेत्रीय इकाई न होकर भौगोलिक निरंतरता या समानता–असमानता का विशिष्ट खंड होता है। यही कारण है कि प्रत्येक राज्यक्षेत्रीय खंड का (Territorial Segment) भौगोलिक सात्यता (Geographical Continuum) में अनिवार्य रूप से उद्‌गमित क्षेत्रीय विशिष्टता के आधार पर प्रादेशिक विभाजन होता है। किसी भी राज्यक्षेत्रीय खंड के विभिन्न प्रदेश अनुमाप (Scale) तथा संरचनात्मक और कार्यात्मक भूदृष्यावली में भिन्नता प्रस्तुत करते हैं और यही भिन्नता प्रदेश विशेष के भौगोलिक विवरण का आधार बनती है। प्रादेशिक अध्ययन की समग्रता का परिज्ञान की भाँति प्रतिरूपित किया जा सकता है।

इस तरह, प्रदेश क्षेत्रीय अध्ययन की सूक्ष्मता गुण के संदर्भ में समग्र भौगोलिक अभिव्यक्ति है, जिसमें भौतिक तथा मानवीय या सांस्कृतिक भौगोलिक तत्वगत एवं क्रियात्मक विशिष्टताएं निहित होती हैं। प्रादेशिक अध्ययन भौगोलिक विवरण को तुलनात्मक संदर्श प्रदान करता है और इस तरह यह तुलनात्मक इतिहास की प्रासंगिकता हासिल करता है।

उत्तरी भारत की प्रादेशिक अवस्थिति उत्तर में नेपाल से संलग्न अन्तर्राष्ट्रीय सीमा, पश्चिम में पाकिस्तान से संलग्न सीमा, दक्षिण में श्रीलेका से तथा पूरब में बंग्लादेश से संलग्न राज्य सीमा से परिभाषित होती है। इस प्रदेश का क्षेत्रीय आकार लगभग 2,97,3,190 वर्ग कि.मी. विस्तार का है।

उत्तरी भारत भौगोलिकता की ऐतिहासिक पहचान पूर्व ऐतिहासिक काल से वर्तमान कालावधि तक क्षेत्रीय मानव बसाव परंपरा तथा प्राप्त प्रमाणों से बनती है। उत्तरी बिहार में मानव बसाव की परंपरा प्रागैतिहासिक मानी गयी है, परंतु इसके ऐतिहासिक प्रमाण इस क्षेत्र में आर्यो के आगमन की घटना से जुड़े हैं। मान्यता है कि भारत में मानव निवास पूर्व वैदिक काल से हुआ है।

उत्तरी भारत की भूसंरचना की विशिष्टता मुख्यतः इसकी सरल एवं नवीन बनावट से अभिव्यक्त होती है। देश का भूगर्भिक इतिहास टर्शियरी भूसंचलन तथा इसके बाद की मैदान निर्माण घटनाओं से संबंध रखता है। स्वभावतः, भूसंरचनात्मक विशिष्टताओं के अनुरूप भारत के भौगोलिक क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः

नवीन वलित पर्वतः टर्शियरी काल में हिमालय पर्वत निर्माण संचलन की अनुक्रिया में गंगा बेसिन का चलन हुआ तथा उत्तरी बिहार के उत्तरी–पश्चिमी संकीर्ण भाग में पर्वत श्रेणी का निर्माण हुआ। इसके निर्माण में बजरी (Gravels), गोलाश्म (Boulder), संगुटिकाश्म (Conglomerates) बालू–पत्थर तथा चूना पत्थर का संयोग पाया जाता है। दून और सुमेश्वर श्रेणियों के रूप में निम्न हिमालय या सिवालिक्स का प्रतिनिधित्व इस भूसंरचना की प्रावस्था को दर्शाती है।

जलोढ़ मैदानः उत्तरी भारत के मैदानी भाग की रचना जलोढ़ निक्षेपों से है। प्रदेश का 90 प्रतिशत से अधिक भाग इस निक्षेप संरचना का प्रतीक है। गंगा तथा उत्तर से प्रवाहित सहायक नदियों का जलोढ़ निक्षेपण में योगदान

है। इस मैदान की संरचना में बांगर तथा खादर जलोढ़ों का संयोग है। जलोढ़ चादर की मोटाई या गहराई अनुमानतः 3000 से 8000 मीटर के मध्य है। जलोढ़ संरचना की प्रकृति पश्चिम में उत्तर प्रदेश के बांगर तथा पूरब में पश्चिम बंगाल के खादर के संक्रमण सदृश्य है। बांगर तथा खादर संरचना का क्षेत्रीय विस्तार अनुपात लगभग बराबर है। बांगर (OlderAlluvium) दक्षिण–पश्चिमी तथा खादर (NewerAlluvium) उत्तरी–पूर्वी भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैदानी संरचना में तराई क्षेत्र के जलोढ़ की चौड़ाई नेपाल सीमा से संलग्न लगभग 10 किमी. है। यह महीन तथा मोटे कणों वाली संरचना का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। बांगर जलोढ़ के निक्षेप को प्लिस्टोसीन काल से भी जोड़ा गया है। खादर ज्यादा नवीन है, जो प्रति वर्ष नदियों द्वारा निक्षेप से पुनर्नवीन होता है। जलोढ़ संरचना के निक्षेप मृत्तिका (Clay), सिल्ट तथा बालू प्रकार के होते है। बांगर में चूना कंक्रीट (Lime Concretion) तथा खादर में कार्बनमय (Carbonaceous) पदार्थो की प्रधानता पाई जाती है।

उत्तरी भारत के इतिहास की एक विशिष्टता इसके स्थल स्वरूप की समदैशिकता (Isotropism) में है। संपूर्ण प्रदेश मैदान प्रभावी (Plain Dominant) है। इसकी भू–आकृति विशेषताएं भू–संरचनात्मक विशेषताओं की सहानुभूति पर संरचना का प्रत्यक्ष नियंत्रण है तथा इसका परिज्ञान इसे दो मुख्य भागों में बाँटकर हासिल किया जा सकता हैः

क. संकीर्ण एवं लघु पर्वतीय धरातलः उत्तरी–पश्चिमी अवस्थिति की नवीन वलित संरचना की सहानुभूति में सिवालिक्स पर्वतीय धरातलाकृति की सीमित तथा संकीर्ण आवृति है। पश्चिमी चंपारण जिले में स्थित मात्र 586 वर्ग किमी. भौतिक विस्तार का हिमालय का पर्वतीय भू–भाग उत्तरी बिहार के मैदान से 160 मीटर समोच्च रेखा के उत्तर परिभाषित है। यह 32 कि.मी. से कुछ अधिक लंबाई तथा 6–8 कि.मी. की चौड़ाई में फैला है। इस पर्वतीय भाग की भूकृतिक विशिष्टताएं इसके तीन उपविभागों की भौतिक विशेषताओं से स्पष्ट होती हैः (क) सुमेश्वर की पहाड़ी शृंखला, (ख) हरहा घाटी, (ग) रामनगर दून। उत्तरी बिहार के इस पर्वतीय अनुभाग में शृंखलाओं का त्रिस्तरीय विन्यास है। रामनगर दून दक्षिणी शृंखला का निम्न पहाड़ी भाग है (लंबाई 32.18 किमी., चौड़ाई 6 से 8 किमी., सबसे ऊँचा भाग संतपुर के निकट 241.7 मीटर)। हरहा घाटी का विन्यास रामनगर दून के उत्तर–पूर्व से है, जिसकी लंबाई 22.5 किमी. तथा समुद्र तल से अधिकतम ऊँचाई 152.4 मीटर है। इस घाटी के दक्षिण में स्थित जलोढ़ मैदान ऊपर उठा हुआ है। सुमेश्वर शृंखला उत्तर सीमान्तीय अवस्थिति दर्शाती है। पश्चिम (त्रिवेणी नहर के शीर्ष भाग के समीप) से पूर्व भिखना थोरी दर्रा तक इसकी कुल लंबाई मात्र 74 किमी. है (बिहार में औसत चौड़ाई 4.8–6.4 किमी., औसत ऊँचाई समुद्र तल से 457.2 मीटर–दक्षिण में 152.4 मीटर से शुरू होकर उत्तर में अधिकतम 609.6 मीटर, सुमेश्वर किले की ऊँचाई 879.4 मीटर)। सुमेश्वर दर्रा, भिखना थोरी दर्रा तथा मरवाट दर्रा प्राकृतिक रूप में नेपाल सीमा से संलग्न हैं। सुमेश्वर दर्रा, जुरी पानी सरिता, भिखना थोरी दर्रा कुदी नदी के मुख के निकट तथा मरवाट दर्रा हरहा नदी घाटी के सहारे स्थित है।

ख विस्तृत मैदानः उत्तर–पश्चिम में 150 मीटर एवं पूर्व में 25 मीटर की समोच्च रेखाओं से परिभाषित लगभग संपूर्ण उत्तरी बिहार की भौतिक पहचान वृहद् गंगा मैदान के उल्लेखनीय अनुभाग के रूप में चिन्हित है। गंगा तथा हिमालयी उत्पत्ति की प्रमुख सहायक नदियों से सृजित लगभग समतल जलोढ़ मैदान की औसत ऊँचाई 100 मीटर से भी कम हैं तथा धरातलीय ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर है, जिसकी प्रवणता प्रति 5 किमी. के संदर्भ में 1 मीटर से भी कम है। बांगर तथा खादर की क्षेत्रीय विशिष्टताओं के उत्तरी भारत के विस्तृत मैदान की उँचावचीय विशेषताएं दो हैंः (क) गंडक, कोसी तथा महानंदा नदियों के दोआब (Interfluves) से संलग्न बने ऊँचे ढालों के जलोढ़ शंकु या पंख (Interfluves), (ख) निम्न प्रवणता के अंतःक्षेपी (Intervening) ढाल या अंर्तशन्कु (Inter-cones)। विस्तृत मैदानी प्रकृति के इस भौगोलिक प्रदेश की संरचना तथा उच्चावचीय विशेषताओं के अनुरूप विस्तृत मैदान की स्थलाकृतिक विशिष्टताओं को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता हैः

(क) **पुराना जलोढ़ भागः** इसके अंतर्गत प्राकृतिक तटबंधों तथा दोआब मैदान, जो आस–पास के सतह से 6.8 मीटर से 7.6 मीटर ऊँचे हैं, के क्षेत्र आते हैं।

(ख) **बाढ़ का मैदान या नये जलोढ़ भागः** पश्चिम में गण्डक नदी से पूर्व में कोसी नदी तक फैला विस्तृत भाग उच्च भूमि या टीलों की अनुपस्थिति दर्शाता है। निम्न उच्चावच का यह मैदान प्रति वर्ष बाढ़ग्रस्त होता है।[3]

भौतिक परिस्थितियाँ किसी भी प्रदेश के भौगोलिक आधार की रचना का मूल होती है। भौगोलिक प्रदेशों का भूवैन्यासिक संगठन इतिहास के घटकों की अनुक्रिया द्वारा ही नियत होता है। दूसरे शब्दों में, वातावरण और मानव–प्रेरित आर्थिक तथा सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर्क्रियाओं का प्रारंभ एवं निरंतरता इतिहास में ही निहित होता है। भौगोलिक इतिहास के तत्वों या घटकों की दशाएं प्रदेश के लिए वातावरणीय अनुकूलता या प्रतिकूलता को नियत करती हैं, जिसके अनुरूप मानव की सकारात्मक या नकारात्मक अनुक्रिया होती है। आर्थिक तथा सामाजिक–सांस्कृतिक उपलब्धियों के विविधरूपी परिलक्षणों का अवस्थिति आधार भौतिक धरातल और परिवेश से ही निर्धारित होता है। प्रदेशों की परिसीमा में भौतिक धरातल एवं परिवेश विविधता या क्षेत्रीय असमानता सांस्कृतिक भूदृश्य की रचना में धनात्मक तथा ऋणात्मक भूमिका अदा करती है। उत्तरी भारत के संदर्भ में इतिहास की विशिष्टताएं प्रदेश की आर्थिक और सामाजिक–सांस्कृतिक विलक्षणताओं की अभिव्यक्ति में स्थानिक प्रसंग में धनात्मक और ऋणात्मक प्रभाव डालती है।

प्रादेशिक आर्थिक तंत्र पर्यावरणीय रचना एवं मानवीय क्रियाशीलता का वास्तविक परिलक्षण है। उत्तरी भारत का आर्थिक तंत्र भूमि उपयोग प्रारूप में कृषि क्षेत्र की वरीयता के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के संदर्भ में 60 प्रतिशत से कुछ अधिक शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अनुपात की तुलना में उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल, तथा महाराष्ट्र के लिए यह अनुपात 70 प्रतिशित से अधिक और बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, तथा आन्ध्रप्रदेश के लिए 60 प्रतिशत से अधिक तथा हरियाण, चण्डीगढ़, एवं उतराखंड के लिए राष्ट्रीय औसत से कम है।[4]

उत्तरी भारत की कृषि विशेषताएं पर्यावरणीय या भौतिक विरासत में प्राप्त परिस्थितियों में मानवीय अनुक्रियाओं से प्रेरित आर्थिक अभिव्यक्तियों का प्रतीक है। प्रादेशिक कृषि निष्पादन एवं संपादन प्रवृतियाँ कई पर्यावरणीय, भूसंगठन एवं संस्थागत परिस्थितियों और अवस्थापना तत्वों और प्रौद्योगिकी उपलब्धियों में स्थानिक/क्षेत्रीय विविधताओं से नियत होती रही हैं। मौसमी नियमन, भोजन पद्धति, भूमि की गुणवत्ता, मृदा तथा मौसम दशाओं में भिन्नता, सिंचाई सुविधा तथा प्रचलित कृषि पद्धति के आलोक में उत्तरी बिहार का कृषियोत्पादन कई विशिष्टताएं हासिल करता है:

1. कृषियोत्पादन में स्पष्ट समायोजन, गहनता तथा फसल साहचर्य की प्रवश्ति निहित है।
2. कृषि उत्पादन के प्रसंग में विभिन्न फसलों के प्रकार एवं अनुमाप की दृष्टि से प्रत्यक्ष एवं विशिष्ट क्षेत्रीय प्रतिरूपण विकसित पाया जाता है।
3. धान की खेती सर्वत्र होती है। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र समूह पूरे भारत के कुल उत्पादन का 32.6 प्रतिशत (1999–2000 कृषि वर्ष) के लिए उत्तरदायी रहा है। इसके अलावा उत्तरी भारत के अन्य राज्यों का समूह राज्य के कुल धान उत्पादन के 16.8 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है।
4. धान के बाद गेहूँ की कृषि उत्तरी भारत में महत्वपूर्ण है। उत्तरप्रदेश पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, भारत के कुल गेहूँ उत्पादन का 44.6 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी रहा है। इसके अलावा उत्तरी भारत के अन्य पूर्वी जिलों का समूह कुल उत्पादन का 14.8 प्रतिशत योगदान करता है।
5. उत्तरी भारत की कृषि में गन्ने के उत्पादन क्षेत्र में संकेन्द्रण की प्रवृति स्पष्ट है। उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक का समूह भारत के कुल गन्ना उत्पादन का 90 प्रतिशत से अधिक योगदान करता है। वास्तव में इस राज्य का पश्चिमी अनुभाग भारत के गन्ना कृषि क्षेत्र की पहचान चिन्हित करता है।
6. जूट की खेती भारत के उत्तरी एवं पूर्वी अनुभाग में संकेन्द्रित है। यह एक नगदी फसल है। भारत राज्य के कुल 1870 हजार मीट्रिक टन जूट (पटसन) उत्पादन का संपूर्ण हिस्सा बिहार, पश्चिम बंगाल, तथा असम से प्राप्त होता है।
7. उत्तरी भारत की कृषि पारिस्थितिकी चना, खेसारी एवं अन्य दलहन तथा तिलहन की कृषि को भी स्थानीय परिवेश में समर्थन प्रदान करती है। इनके उत्पादन क्षेत्र पश्चिमी राज्यों से चिन्हित होते हैं।
8. सब्जी एवं फल की कृषि के लिए उत्तरी भारत विशेषकर गंगा के उत्तरी क्षेत्र का पश्चिमी भाग महत्वपूर्ण है। हरियाण, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल, तथा पंजाब में मिर्च तथा अन्य हरी सब्जियों का उत्पादन होता है। आम, लीची, कटहल, केला, पपीता, अमरूद, नींबू इत्यादि की उत्पादन परिस्थितियां यहाँ अनुकूल पायी जाती हैं।

उत्तरी भारत में कृषिगत विशेषताओं में क्षेत्रीय विविधताएं पायी जाती हैं। ऐसी विविधताओं की अभिव्यक्ति कृषि प्रदेशों के परिसीमन के माध्यम से होती है। उत्तरी भारत के कृषि प्रदेशों की पहचान के आधार कृषि उत्पादकता, कृषि दक्षता, फसल गहनता, फसल संकेन्द्रण, फसल प्रसार, फसल प्रारूप तथा फसल साहचर्य इत्यादि गुणों में चिन्हित होते हैं। उत्तरी भारत के कृषि भूदृश्य का सामान्य परिज्ञानः (क) कोसी मैदान कृषि प्रदेश, (ख) पश्चिमोत्तर सारण मैदान एवं तिरहुत क्षेत्र का कृषि प्रदेश, (ग) कोसी बागमती के बीच का कृषि प्रदेश की पहचान सुनिश्चित कराता है।[5]

कृषि का मूलाधार भूमि एवं जल है। जल वर्षा तथा सिंचाई से सुनिश्चित होता है। मूल रूप में उत्तरी भारत की कृषि जलवायु की संतान (Child of Climate) है। तापक्रम–आर्द्रता–वर्षा संतुलन कृषि के लिए जल तथा नदियों की उपस्थिति में सिंचाई व्यवस्था को सुनिश्चित करता है। बाढ़ का मैदान मृदा निवेश के रूप में भूमि आधार की मात्रात्मक तथा गुणात्मक अनुकूलता प्रंदान करता है। भौतिक पारिस्थितिकी में भिन्नता के अनुरूप उत्तरी बिहार को (क) पूर्वी, (ख) मध्यवर्ती तथा (ग) पश्चिमी कृषि जलवायु प्रदेशों में बाँटा जा सकता है।

उत्तरी भारत की कृषि पारंपरिक क्रिया पद्धति, पुरानी प्रौद्योगिकी, वर्षा की अनिश्चितता, बाढ़ के प्रकोप, जीवन निर्वाह प्रकृति, कृषि भूमि पर जनसंख्या का अतिभार, सिंचाई की अनिश्चितता तथा सरकारी स्तर पर सकारात्मक कृषि नीतियों के क्रियान्वयन में विफलता से उद्‌गमित समस्याओं से ग्रस्त है। इस दिशा में कृषि के आधुनिकीकरण एवं नियोजन की अनिवार्यता है।[6]

निष्कर्ष

गैर कृषि अर्थव्यवस्था के विकास के संसाधन आधार, विशेषकर खनिज आधार, लगभग पूर्णतः अनुपस्थित है। प्रदेश की अर्थव्यवस्था में उद्योगों का आर्थिक योगदान अत्यल्प है। आधारभूत उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक खनिज संपदा का अभाव है। सोडियम साल्ट तथा साल्ट पीटर के निक्षेप गण्डक क्षेत्र में मिलता है, लेकिन इनका वाणिज्यिक या औद्योगिक महत्व गौण है।

उत्तरी भारत के औद्योगिक मानचित्र पर मुख्यतः कृषि उत्पादन पदार्थो या संसाधन से संबंधित उपयोग के लिए प्रादेशिक माँगों से प्रेरित चावल मिलों, आटा मिलों, चीनी मिलों तथा जूट मिलों की स्थानिक अवस्थिति आवृत्तियाँ पश्चिमी, विशेषकर पश्चिमोत्तर भाग में जूट मिलों की अवस्थितियाँ आवृतियाँ पूर्वी भाग में उत्तरी भारत की कृषि आधारित औद्योगिक परंपरा की कहानी है।

संदर्भ सूची

1. बिहार सरकार (2003), नई औद्योगिक नीति।
2. जनगणना प्रतिवेदन (2001), बिहार खण्ड।
3. बिहार सरकार (2002–03), *आर्थिक समीक्षा*।
4. मिश्र विजय कुमार, (2006–07), *बिहार एक परिचय*।
5. बिहार सांख्यिकी पुस्तिका, 2003।
6. राकेश बहादूर सिंह (2007–08), *बिहार में आर्थिक उपार्जन एवं पिछड़ापन,* जेनरल बुक एजेन्सी, पटना. पृष्ठ–37।

****